Indian J.Soc & Pol. 03(03):2016:87-90 **ISSN 2348-0084 (PRINT)**
(Special PrintIssue: September, 2016) **ISSN 2455-2127(ONLINE)**

भारत में धर्म और राजनीति

रेनू सिंह[1]
[1]प्राध्यापिका (राजनीति विज्ञान),रामपूजन सिंह स्मारक महाविद्यालय,अतरौलिया आज़मगढ़ उ0प्र0

ABSTRACT

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में धर्म व राजनीति का अत्यधिक गहरा सम्बन्ध रहा है, प्रकारांतर में कहें तो दोनों में गुरू और शिष्य सरीखा तालमेल रहा, पुराकाल में धर्म राजनीति का पथ प्रदर्शक रहा और राजनीति धर्म की अनुगामिनी. राजसत्ता के पीछे–पीछे चलती रही है, इतिहास साक्षी है कि जब–जब धर्मसत्ता से राजसत्ता विमुख हुई तब–तब राजनीति विध्वंस विनाश व पतन का कारण बनी। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत में धर्म और राजनीति के इसी अर्न्तसंबंध को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

***KEY WORDS:** भारत, धर्म, राजनीति, नैतिकता, मूल्य*

भारतवर्ष में लोक कल्याणकारी, सर्वजन हिताय व सर्वजन सुखाय की उदात्त भावना के साथ शासन करने वाली सत्ता सदैव धर्म से प्रेरित, अनुशासित व आवद्ध रही है, रामचरितमानस में मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम अपने अनुज भरत को राजनीति का मर्म समझाते हुए कहते हैं–

'मुखिया मुख सो चाहिए, खान–पान कहुं एक।
पालइ पोषाई सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।

(अयोध्याकाण्ड 315)

अर्थात् राजा किसी भी जाति या सम्प्रदाय का हो सकता है, परन्तु स्वभाव से समस्त प्रजाजन का पालन ही उसका सर्वोच्च धर्म है, धर्म की दृष्टि में राजा का अपना कोई हित नहीं होता, प्रजा का समुचित ध्यान रखना ही उसका परम कर्तव्य है, कौटिल्य के अनुसार–

'प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्म प्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।'

(कौटिल्य,11.09.16)

धराधाम पर अवतीर्ण धर्म के अवतार श्रीराम अनुज भरत से कहते हैं–

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।' (अयोध्याकाण्ड 70)

अर्थात्, धर्मानुसार प्रजा के दुखों का निवारण न करने वाले राजा को नर्क भोगना पड़ता हैं, हमारी सांस्कृतिक विरासत में यह राजधर्म लोकधर्म की संज्ञा से अभिहित है, यही लोकधर्म सर्वधर्म– समभाव (धर्मनिरपेक्षता) की पूर्व–पीठिका है, वस्तुतः रामराज्य जो धर्म का राज्य रहा है।, उस राज्य की राजनीति में जनमत ही सर्वोपरी रहा–

'करब साधुमत लोकमत, नृपमति निगम निचोरि।' (अयोध्याकाण्ड 258)

दरअसल, रामायणकाल में धर्म ने सदैव की भांति राजनीति को मर्यादापूर्ण आचरण व लोक–कल्याणकारी दृष्टि प्रदान की, हमारी सनातन मान्यता रही है कि 'धर्म व्यक्ति के आचरण और व्यवहार की संहिता है, जो उसके कार्यों को देश, काल और परिस्थिति के अनुसार व्यवस्थित, नियोजित एवं नियंत्रित करता है, तथा उसे स्वस्थ और उज्ज्वल जीवन जीने के लिए सद्ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता है' (मिश्र,1980पृ266) वस्तुतः भारतीय परम्परा में 'धर्म वह वस्तु है जिससे पशु मनुष्य तक और मनुष्य परमात्मा तक उठ सकता है' 'धर्म परम्परा का संरक्षण, नैतिक विधि का रक्षक और विवेक का शिक्षक रहा है'वृहदारण्य उपनिषद के अनुसार–'धर्म की सहायता से एक निर्बल व्यक्ति भी शक्तिशाली पर शासन करने में समर्थ होता है, यह उपनिषद धर्म को सत्य मानता है, यदि कोई व्यक्ति सत्य की घोषणा कर रहा है तो वह धर्म की घोषणा है, और सत्य की घोषणा कर रहा है तो वह सत्य की घोषणा है, इस प्रकार सत्य और धर्म दोनों ही समानार्थी शब्द हैं (बृहदारण्य उपनिषद1.4. 14)दरअसल, भारत भूमि पर प्राचीनकाल से ही धर्म सत्य के रूप में धारण किया जाता रहा है, प्रकारान्तर में सत्य को सर्वोपरि धर्म माना जाता रहा है–

'धर्म न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुराण बखाना।।'

1.Corresponding Author

ऋषियों, मुनियों ने भारतवर्ष को जो धार्मिक विशिष्टता प्रदान की वह अद्‌भुत है, वह परपीड़न को धर्म विरोधी मानाता है, परहित, परोपकार सरीखे मानवीय तत्व उसके मूलाधार हैं, वह लोकहित को परम धर्म समझता है–

'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।
निर्नय सकल पुराण वेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर।।
(अयोध्याकाण्ड 40.01)

रामचरितमानस के अनुसार–

'नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।

धर्म की इसी लोककल्याणकारी प्रवृति के कारण धर्म और राजनीति में गहरा सम्बन्ध था, धर्म राजनीति का मार्गदर्शन करता था और उसे लोककल्याण हेतु प्रेरित करते हुए मर्यादा में आवद्ध रखता था, यही कारण था कि 'प्रत्येक राजा को राज्यभिषेक के समय ही यह प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी कि वह धर्म की स्थापना की रक्षा करेगा, भारत की धार्मिक सांस्कृतिक परम्पराओं ने धर्म को राजा से भी अधिक सम्मान प्रदान किया, एक प्रकार से उसे सभी राजाओं का राजा माना जाता था,'[12]यही कारण था कि प्राचीनकाल की धर्म संचालित राजनीति में लोककल्याण, सर्वधर्म–समभाव, विश्व – बन्धुत्व, परोपकार, प्रेम, सेवा, सहिष्णुता, सत्य, अहिंसा सरीखे उत्कृष्ट भावों का प्राबल्य रहा हैं।

क्हना नहीं होगा धर्म की कल्याणमयी प्रेरणा व समदृष्टि के कारण प्राचीन भारतीय राजनीति में सम्प्रदायवाद की गंध तक नहीं मिलती है, रामायणकाल में चक्रवर्ती सम्राट श्रीराम स्वयं कहते हैं–

'सिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहुं मोहिं न पावा।।'
इतना ही नहीं वे आगे यह भी कहते हैं कि–
'संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महूँ बास।।

छठी शती ई0 पूर्व भारत की यात्रा पर आये यूनानी विद्वान मेगस्थनीज ने मगध साम्राज्य का उल्लेख करते हुए कहीं भी जातिगत अथवा धार्मिक वैमनस्य का संकेत नहीं दिया है, मेगस्थनीज ने यहाँ के समाज के सभी पक्षों की भूरी–भूरी प्रसंशा की है, उसने भारत की समृद्ध और नैतिक परंपरा की चर्चा की है' इसी क्रम में अन्य विदेशी यात्रियों फाह्यान, व्हेनसांग (दोनों चीनी यात्री) के विचार भी भारत के प्रति सकारात्मक रहे, 10वीं –11 वीं शताब्दी में प्रसिद्ध अरबी विद्वान अलबरूनी ने भारत को विस्तार से देखा–परखा था, एक इस्लामी अवालोकनकर्ता होने के नाते हिन्दू समाज के प्रति उसकी परख और कड़ी रही होगी, परन्तु उसने भी जातिगत ऊँच –नीच, हिंसा, शोषण, उत्पीड़न या वैमनस्य का कहीं उल्लेख नहीं किया'

कहना नहीं होगा कि धर्म की उदार दृष्टि व उससे संचालित राजनीतिक या राजव्यवस्था के कारण भारतवर्ष में विभिन्न मतों का प्रचार–प्रसार हुआ, 'अशोक, हर्षवर्धन सरीखे राजा धर्मनिरपेक्षता (सर्वधर्म–समभाव) के पोषक रहे, राजतरंगिणि से पता चलता है कि अशोक ने कश्मीर में विजयेश्वर नामक एवं शैव मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था तथा उसके भीतर दो समाधियाँ निर्मित करवायीं थीं, अशोक के काल में किसी भी साम्प्रदायिक संघर्ष का कोई उदाहरण नहीं मिलता हैं' (दैनिक जागरण ,30 जून 2006) अशोक की घोषणा में उत्कीर्ण है कि 'दूसरों के सभी धर्म सम्मान के योग्य हैं, उनका आदर करने वाला अपने ही धर्म का आदर करता है,(श्रीवास्तव,185) ध्यातव्य है कि 'सम्राट अशोक ने भले ही बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था परन्तु उसने धर्मावलम्बियों के प्रति आदर व्यक्त किया और सभी सम्प्रदायों से कुछ न कुछ ग्रहण किया,।

एक शक्तिशाली सम्राट होते हुए भी उसने धर्म को किसी पर थोपने का प्रयास नहीं किया, यह धर्म की ही प्रेरणा थी, अन्यथा वह भी सिकन्दर की भांति तलवार के बल पर विश्व–विजय अभियान पर निकल पड़ता, वह शांति एवं सहिष्णुता का महान पुजारी था, अशोक ने सर्वप्रथम 'जियो और जीने दो' तथा 'राजनीतिक हिंसा धर्म विरूद्ध है' का पाठ पढ़ाया, अशोक महान ने धर्म से राजनीतिक को संचालित किया, अस्त्र–शस्त्र को तिलांजलि देकर धर्म विजय के मार्ग पर प्रवृत हो शांति, सद्‌भावयुक्त विशाल साम्राज्य की स्थापना की, भारत के स्वर्णिम अतीत के उद्‌गाता महाकवि जयशंकर प्रसाद के शब्दों में कहें तो

'विजय केवल लोहे कि नहीं, धरम् की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होते साम्राट, दया दिखलाते घर–घर घूम।।

गुप्त काल की राज्य–व्यवस्था धर्म–संचालित व्यवस्था थी, सर्वधर्म–सम्भाव की दृष्टि से यह काल महत्वपूर्ण रहा। उल्लेखनीय है कि 'वेष्णव धर्म (हिन्दू धर्म) का अनुयायी होते हुये भी इस काल में विभिन्न धर्मो को पुष्पित–पल्लिवित होने का समुचित अवसर प्रदान किया गया। गुप्त साम्राज्य बिना किसी भेद–भाव के उच्च प्रशासनिक पदों पर सभी धर्मानुयायियों को नियुक्ति करते थे।

वस्तुतः भारत में धर्म की उदारवादी व व्यापक दृष्टि ने विरोध के बजाय संयोजन का मार्ग प्रस्तुत किया। राजनीतिक संस्थाओं को भी सर्वधर्म–सम्भाव युक्त सहिष्णुतापूर्ण, उदारवादी व कल्याणकारी दृष्टिकोण प्रदान किया। यही कारण है कि

भारतीय जनमानस स्वभाव से ही धर्मनिरपेक्ष रहा था। 'न्यायमूर्ति गजेन्द्र गड़कर और एम.एच. बेग ने संयुक्त रूप से इस बात की पुष्टि की है कि प्राचीन भारतीय समाज में धर्मनिरपेक्षता का पालन किया जाता था।'(कश्यप, 2002,पृ60)

वर्तमान परिपेक्ष में धर्म और राजनीति के चरित्र व मनोविज्ञान पर गूढ़ व गम्भीर चिन्तन करने पर प्रतीत होता है कि धर्म और राजनीति का सकारात्मक संयोग देश–काल व परिस्थिति की माँग है। दो टूक शब्दों में कहा जाय तो आज के दौर में साम्प्रादायिक शक्तियों के हाथों की कठ्पुतली बनी राजनीति, भ्रष्टाचार के भष्मासुर के साथ न केवल गलबहियाँ कर रहीं है, अपितु अपराधी व आसमाजिक तत्वों के साथ कदम से कदम मिलाकर भी चल रही है। अपने उत्तरदायित्वों को ताक पर रखकर यह केवल और केवल राजनेताओं व उनके मातहतों का पेट भरने का साधन मात्र रह गयी है।

उल्लेखनीय है कि अपना उल्लू सीधा करने के लिए सत्ताधीशों ने न केवल राजनीति को धर्म से विलग किया अपितु धर्म, राजनीति और धर्मनिरपेक्षता की मनमानी व सुविधाजनित व्याख्याएँ कर उन्हें मनचाहे सांचों में ढाल दिया। और तो और गाँधी जी के विचारों पर चलने का दम भरने वाले इसमें औरों से दो कदम आगे ही रहे। किसी ने न तो गाँधी के धर्म और राजनीति सम्बन्धी विचारों को समझने की कोशिश की और न ही व्यावहारिक राजनीति में स्थान दिया। इतना ही नहीं प्रायः सभी नेताओं ने स्वयं से धर्म को दूर रखा, क्योंकि धर्म उनके स्वार्थपूर्ण कार्यों में आड़े आता, उन्हें भ्रष्टाचार, अनाचार, कदाचार आदि करने से रोकता। उनके जनविरोधी व निहीत स्वार्थ सम्बन्धी मार्ग में नैतिकता, सत्य, अहिंसा व कर्तव्य निष्ठा की दीवारें खड़ी कर देता।

प्रसिद्ध गाँधीवादी अमरनाथ भाई ने सच ही कहा है कि 'सत्ता प्रतिष्ठानों में बैठे हुए लोगों के लिए गाँधी बहुत खतरनाक आदमी है, वह चाहे राज सत्ता हो, अर्थसत्ता हो या धर्मसत्ता हो। 15 अगस्त, 26 जनवरी, 2 अक्टूबर का गाँधी, 30 जनवरी का गाँधी, राजघाट का गाँधी, साबरमती का गाँधी, वोट माँगने का गाँधी, नोट पर छापे का गाँधी बड़ा आसान है, लेकिन क्रान्तिकारी गाँधी, बगावती गाँधी, युगपरिवर्तनकारीगाँधी, शासन शोषण के खिलाफ लड़वैया गाँधी, अन्तिम जन का मसीहा गाँधी, सत्ता सुख लूटने वाले को मुश्किल में डालने वाला गाँधी नजरअन्दाज किया गया। इस प्रकार आसान को आसान बनाया गया, परन्तु मुश्किल को दफनाने की कोशिश हुई'।

कहना नहीं होगा कि राजनीति को परिमार्जित व सुधार कर उसको लोक–कल्याणकारी बनाने हेतु यदि अमर नाथ भाई के शब्दों में क्रान्तिकारी गाँधी, बगावतीगाँधी, युगपरिवर्तन गाँधी, शासन शोषण के खिलाफ लड़वैया गाँधी, के धर्म और राजनीति सम्बन्धी दर्शन को पूरी ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के साथ क्रियान्वित किया गया होता तो वर्तमान राजनीति रामराज सरीखी कल्याणकारी सिद्ध हुई होती, परन्तु दुर्भाग्य से ऐसा नही हो सका।

वस्तुतः सामाजिक गति को संतुलित करने हेतु धर्म और राजनीति दोनों का सम्यक अनुपात में सक्रिय होना अनिवार्य है। समाज केवल धर्म अथवा केवल राजनीति के सहारे संचालित नहीं हो सकता। दोनों के मध्य आनुपातिक संतुलन अपरिहार्य है। जब यह संतुलन डगमगाता है तो समाज में उथल–पुथल मच जाती है और उसको नियंत्रित करने हेतु किसी दैवीय शक्ति को आगे आना पड़ता है। इसी तथ्य को गीता में उद्घाटित करते हुए भगवान श्रीकृष्ण जी कहते है कि–

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्यूत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम।।'(गीता अध्ययन, 4–7)

अर्थात्, जब–जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है, तब–तब मैं ही अपने रूप को रचता हूँ यानि इस धराधाम पर अवतरित होता हूँ।

हमें इस सत्य को गम्भीरता से समझना होगा कि धर्म में कल्याणकारी तत्वों का प्राबल्य है। यह नैतिकता, परोपकार, सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहिष्णुता, सेवा, व करूणा सरीखे मानवीय मूल्यों का वाहक है। यह मानव को सांस्कारिक, चरित्रवान व विचारवान बनाता है। उल्लेखनीय है कि स्वतंत्र भारत में धर्मनिरपेक्षता (जो अपने वास्तविक रूप में पंथनिपेक्षता है) के प्रतिपादक महात्मा गाँधी को समदृष्टि का उदात भाव धर्म से ही प्राप्त हुआ था। '2 मई 1933 को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को लिखे हुए एक पत्र में उन्होंने दृढ़ता के साथ स्वीकृत किया कि – मैं धर्म नहीं छोड़ सकता इसलिए हिन्दुत्व को छोड़ना असम्भव है, यदि हिन्दुत्व ने मुझे निराश किया तो मेरा जीवन बोझ बन जायेगा। हिन्दुत्व के कारण ही मैं ईसाइयत, इस्लाम, एवं अन्य धर्मों से प्रेम करता हूँ।'(यंग इण्डिया 3 अप्रेल 1924)

क्या धर्म में रचे बसे लोकहितकारी तत्वों से विमुख होकर राजनीति एक छलावा व शोषण का हथियार नहीं बन जाती। स्पष्ट शब्दों में कहें तो आज की राजनीति अपने वर्तमान रूप में शोषण का हथियार मात्र बन कर रह गयी है। आज समाज में उफान मारती साम्प्रदायिकता, सिर उठाकर भ्रष्टाचार, अत्याचार, कदाचार का कारण क्या है? निःसंदेह वोट बैंक की राजनीति, येन–केन प्रकारेण सत्ता हड़पने की हवस एवं देश समाज के प्रति दायित्व की विस्मृति।

धर्म की बात करें तो वर्तमान में धर्म स्वार्थपूर्ण, कुटिल, राजनीतिक षड़यंत्रों का शिकार है। धर्म के मार्ग पर चलने वाली राजनीति आज धर्म की विरूद्ध कुचक्र रच रही है। संक्षेप में कहें तो धर्मविहीन हो चुकी राजनीति अपना मतलब साधने के लिए अन्धाधुन्ध धर्म का दुरूपयोग कर रही है। उसने धर्म को हाशिये पर धकेलकर साम्प्रदायिक कट्टरता को पूरी तरह से अपना लिया है। साम्प्रदायिक कट्टरता व तथाकथित राजनीति का घातक गठजोड़ अपने विनाशकारी प्रभाव से देश व समाज को लहूलुहान कर रहा है। असहयोग, असहिष्णुता व साम्प्रदायिक दंगे सामाजिक समरसता के ताने–बाने को तार–तार कर रहें हैं। जाहिर है कि इस विषम परिस्थिति से उबरने के लिए धर्म एवं राजनीति का विवेकपूर्ण संयोग कराना होगा।

वर्तमान राजनीति के चरित्र को देख व समझकर राजनीति के प्रति गाँधी जी का यह विचार हमें बरबस ही याद आ जाता है कि 'धर्मविहीन राजनीति मृत्युजाल के समान है, क्योंकि यह आत्मा का हनन करती है।' वे धर्म के बिना राजनीति का विधवा मानते थे। गाँधी जी की दृष्टि में धर्म के अभाव में राजनीति का कोई स्थान नहीं है। धर्म नैतिक नियमों की श्रेष्ठता पर आधारित होता है। राजनीति में धर्म को लाने का तात्पर्य है सत्य और प्रेम के सिद्धांतों को निरन्तर आगे बढ़ाना। उल्लेखनीय है कि 'उनकी दृष्टि में धर्म का आशय किसी धर्म विशेष अथवा परम्परागत धर्म से न होकर उस धर्म से है जो सभी धर्मों का आधार है। गाँधी जी के अनुसार–'मेरा धर्म उन नियमों से बना है जिनसे संसार के मानव आवद्ध हैं।' प्रख्यात गाँधीवादी विचारक डा. भगवान दास के अनुसार–'गाँधी जी ने मानते है कि धर्म के दो पक्ष होते हैं– नैतिक पक्ष और संस्थागत पक्ष। वस्तुतः धर्म के नैतिक पक्ष पर सभी धर्मों में आम सहमति होती है और नैतिक मूल्यों को लेकर उनमें टकराव नहीं होता है। सत्य, दया, करूणा, परोपकार, सरीखे मूल्य साझे होते हैं।' गाँधी जी की यह स्पष्ट मान्यता थी कि धर्म के नैतिक पक्ष के बिना राजनीति लोककल्याण के उद्देश्यों को पूरा नही कर सकती। धर्म का नैतिक पक्ष समाज को तोड़ता नहीं बल्कि जोड़ता है। टकराव नहीं उत्पन्न करता अपितु सामाजिक समरसता का संवर्धन करता है। गाँधीवादी कमलापति त्रिपाठी ने स्पष्ट रूप से कहा है–' धर्म के नैतिक रूप को लेकर कभी दंगे नहीं होते हैं।'

आज धर्ममय राजनीति देश–काल और परिस्थिति की अनिवार्य आवश्कता है। तथाकथित धर्मनिरपेक्षतावादियों तथा धर्म का विरोध करने वालो को धर्म के प्रति अपना पूर्वाग्रह त्यागकर धर्म की महत्ता को अंगीकार करते हुए धर्म के नैतिक पक्ष को राजनीति में उचित स्थान प्रदान करना होगा। दलगत स्वार्थ से ऊपर उठकर धर्म के दुरूपयोग से बाज आना होगा, ताकि देश व समाज का कायाकल्प हो सके, भारत के कोने–कोने में सामाजिक समरसता की गंगा अनवरत् गति से प्रवाहित हो सके। और हम हिन्दुस्तानी विश्व–बिरादरी के समक्ष सम्मान व गर्व के साथ सिर उठाकर उद्घोष कर सकें कि– सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।

सन्दर्भ

दास, तुलसी, : *रामचरित मानस,* गोरखपुर, गीता प्रेस

कौटिल्य : *अर्थशास्त्र*

मिश्र,जयशंकर 1980, *:प्राचीन भारत का इतिहास,* बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,

विवेकानन्द–सूक्तियाँ और सुभाषित, नागपुर, रामकृष्ण मठ

डासन, इस्टोफर, 1984: *रिलीजन एण्ड कल्चर*न्यूयार्क, मेरीडियन बुक्स

वृहदारन्य उपनिषद, 1, 4,–14

शास्त्री, कान : *दी कान्सेप्ट आफ संकुलर स्टेट*

दैनिक जागरण, धर्मशास्त्रों पर दोषारोपण – एस शंकर, 30 जून 2006

श्रीवास्तव,श्रीकृष्ण चन्द्र :*प्राचीन भारत का इतिहास,*

प्रसाद, जयशंकर प्रसाद –*भारत महिमा*

कश्यप, सुभाष 2002: *हमारा संविधान,* नई दिल्ली नेशलन बुक प्रेस ऑफ इण्डिया

राष्ट्रीय सहारा (हस्तक्षेप परिशिष्ट) स्वरूप देवेन्द्र–गाँधी जी और हिन्दुत्व, 18 जनवरी 2003

यंग इण्डिया, 3 अप्रैल 1924

Rola, Roma- 1924:*Mathama Gandhi in London*,

Bhagwan Das1996 :*Essential Unity Of All Religion,* MGK Varanasi,